

३६ वीं गाथा। यहाँ तक आया है। **भगवान आत्मा ही जानता है कि...** यहाँ से लेना। सूक्ष्म बात है, भाई! प्रचलित बात से अलग प्रकार है। आहा!

श्रोता : सत्य बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा ज्ञायकस्वरूप चिद्घन — ज्ञान और आनन्द का घन प्रभु यह आत्मा, बाकी पुण्य और पाप के विकल्प - राग उठे, वह सब कर्म के निमित्त से हुए, उस कर्म के हैं; मेरा स्वभाव नहीं - ऐसे इस जीव अधिकार में चलता है न? धर्मी जीव उसे कहते हैं। आहाहा! कि यह आत्मा है, वह आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, वह आत्मा ऐसा जानता है। है? **कि परमार्थ से मैं एक हूँ...** आहाहा! यह पर्याय में जो विकार

— दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध जो होता है, वह मैं नहीं हूँ; वह तो भावक-कर्म का वह भाव (है), मेरा भाव नहीं। आहाहा! **यद्यपि समस्त द्रव्यों के परस्पर साधारण अवगाह....** यद्यपि भगवान आत्मा जहाँ हैं, वहाँ दूसरे द्रव्य भी हैं, एक जगह रहने में निवारण नहीं किया जा सकता, कर्म के रजकण, धर्मास्तिकायादि के प्रदेश.... कि जो जीव पात्र हैं, उन्हें ज्ञानी ने ऐसा बतलाया कि भगवन्त! तेरा स्वरूप, शरीर और वाणी की क्रिया से तो भिन्न है परन्तु अन्दर जो पुण्य-पाप का शुभ-अशुभभाव होते हैं, उनसे भी तेरा स्वरूप भिन्न है। आहाहा! ऐसा उसने सुना - जाना और अन्दर में विवेक किया कि मैं तो आत्मा एकरूप स्वरूप हूँ, शुद्धचैतन्य आनन्दकन्द प्रभु... आहाहा! सम्यग्दर्शन की चीज है, बापू! सूक्ष्म बहुत! आहाहा! मैं तो जो सर्वद्रव्य हैं, **परस्पर साधारण अवगाह का निवारण करना अशक्य होने से....** मेरा आत्मा और जड़; मैं भगवान आत्मा और जड़... **श्रीखण्ड की तरह एकमेक होकर रहे हैं,...** एकमेक हो रहे हैं। श्रीखण्ड में दही और खाण्ड मानो एकमेक होकर रहे हैं, वैसे यह आत्मा-भगवान आत्मा और कर्म आदि के परमाणु और पुण्य-पाप के भाव... यहाँ वास्तव में तो पुण्य-पाप के भाव लेना है। वे दो अनादि से एक जैसे ज्ञात होते हैं। अरे! यह तो देखने को कहाँ निवृत्त हो?

यहाँ कहते हैं कि जैसे श्रीखण्ड में दही और खाण्ड का स्वाद भिन्न है, तथापि एक स्थान में, एक भाववाले हों, ऐसा इसे अनादि से दिखता है; वैसे ही भगवान आत्मा अनाकुल आनन्दस्वरूप प्रभु में शुभ और अशुभभाव वे एकमेक हों - ऐसा इसे अनादि से दिखता है, मानो एक हो गये हों, तो भी **श्रीखण्ड की तरह स्पष्ट अनुभव में आनेवाले स्वाद के भेद के कारण**, आहाहा! परन्तु मैं आत्मा चैतन्यस्वरूप, उसका स्वाद पवित्र और आनन्द का स्वाद है, वह मैं। है? **स्पष्ट अनुभव में आनेवाले....** आहाहा! **स्वाद के भेद के कारण, मैं मोह के प्रति निर्मम ही हूँ;...** क्योंकि कर्म के निमित्त के संग से हुए शुभ-अशुभ — दया, दान, व्रत, भक्ति या काम क्रोध के भाव का स्वाद राग का कलुषित (आकुलित है)। आहाहा! मेरा-चैतन्यस्वभाव का स्वाद उससे पृथक् है, ऐसा धर्मी जीव प्रथम धर्म प्राप्त करते हुए, प्रथम धर्म प्राप्त करते हुए, उसे राग का स्वाद भिन्न दिखता है। आहाहा! और आत्मा का स्वाद भिन्न दिखता है। जैसे श्रीखण्ड के स्वाद में दही का और खाण्ड का स्वाद भिन्न है, वैसे मेरा स्वाद, मैं आनन्दस्वरूप प्रभु का स्वाद-चैतन्य का

स्वाद, और दया-दान-व्रत-भक्ति आदि के परिणाम जो राग हैं, उनका स्वाद दही की तरह खट्टा है अर्थात् कलुषित है, मेरा स्वाद-आनन्द का (स्वाद) भिन्न है। आहाहा!

अरे...रे! कब करे? भव का अन्त लाना हो, उसकी बातें हैं यहाँ तो, बापू! भव कर-करके अनन्त काल से मर गया है, नरक के, स्वर्ग के, मनुष्य के, अनन्त-अनन्त भव किये हैं, परन्तु इसने आत्मज्ञान नहीं किया। उसके बिना इसका परिभ्रमण नहीं मिटा। आहाहा! जिसे यह परिभ्रमण मिटाना है, वह आत्मा के और राग के स्वाद को भिन्न जानेगा तो मिटेगा। देखो, यह वाणी! आहाहा! अरे, यह बात! शरीर, वाणी, मन, जड़ और स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, वे तो पर हैं, उनका तो आत्मा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है - ऐसे जड़कर्म के निमित्त से होनेवाले शुभाशुभभाव जो रागादि का स्वाद है, वह जड़ का स्वाद है। चैतन्यज्ञायक मेरा स्वरूप, उसका स्वाद चैतन्य का आनन्द है। अरे! यह फिर... यह स्वाद कैसा होगा? यह दूधपाक का स्वाद और मौसम्बी का स्वाद - ऐसा लोग तो मानते हैं। धूल में भी स्वाद नहीं है, सुन न अब! वह तो जड़ है, जड़ का स्वाद तुझे आता है? जड़ का स्वाद तो जड़-रूपी है। वह खाने से तुझे उसका स्वाद नहीं आता। उसके प्रति राग होता है, उस राग का स्वाद इसे आता है।

अरे...रे! इसे कहाँ पता है? अनादि से बेखबर अज्ञानी, मूर्ख, आहाहा! अपनी जाति को जाना नहीं और रागादि परजाति है, उसे मलिनरूप से जाना नहीं। कनूभाई! ऐसी बात है यहाँ तो! करोड़पति व्यक्ति हो तो.... वह करोड़पति व्यक्ति है। आहाहा! और मानो हम सुखी हैं... धूल में भी नहीं सुखी। आहाहा! है? स्वाद के भेद के कारण श्रीखण्ड की तरह दही और खाण्ड के स्वाद के भेद की तरह स्पष्ट अनुभव में आनेवाले स्वाद के भेद के कारण,.... आहाहा! मैं मोह के प्रति निर्मम ही हूँ;.... यह रागादिभाव है, वह मेरा नहीं है, मैं उसके प्रति निर्मम हूँ। आहाहा! शरीर, वाणी, मन वह तो कहीं रह गये बाहर, धूल। आहाहा! परन्तु अन्दर की पर्याय में कर्म के निमित्त से होनेवाले विकारीभाव का स्वाद भिन्न है; इसलिए उसके प्रति मैं निर्मम हूँ, आहाहा! ऐसी बात है।

वीतराग जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। जिनेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि प्रभु! तेरा स्वरूप अन्दर चैतन्य की

जाति के आनन्द का है न? आहाहा! उस आनन्द का स्वाद, वह तेरा और बीच में जो रागादि का स्वाद तुझे उपयोग में ज्ञात होता है, वह मलिन उपयोग होकर ज्ञात होता है, वह स्वाद तेरा नहीं है। आहाहा! राग के स्वाद को और चैतन्य के स्वाद को भिन्न करना, वह कोई साधारण बात है? अनन्त काल से एक सैकेण्ड भी किया नहीं। आहाहा! धर्म के नाम पर भी दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा — इस राग के भाव को करके मर गया है। आहाहा! यह राग का साथ तो जड़ का है। आहाहा! स्त्री के शरीर के भोग समय शरीर का इसे अनुभव नहीं, प्रभु! तुझे पता नहीं, वह तो मिट्टी है, वह तो धूल है, रूपी का इसे अनुभव नहीं परन्तु उसके प्रति राग होता है कि यह ठीक है, ऐसे राग का अज्ञानी को अनुभव है। मानता है कि इस शरीर को मैं भोगता हूँ। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि यह राग का स्वाद, वह जड़ का है, तेरा स्वरूप नहीं, प्रभु! आहाहा! ऐसा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की पुकार है, यह जीव ने कभी सुनी नहीं है। आहाहा!

यह स्वाद में आने पर भेद के कारण मोह के प्रति निर्मम ही हूँ.... मेरा भगवान् आत्मा चैतन्यस्वरूपी, का जो अतीन्द्रिय आनन्द स्वाद और मोहकर्म के निमित्त से हुआ विकृतभाव - उसका स्वाद अत्यन्त भिन्न है, इसलिए उसके प्रति धर्मी - सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली शुरुआतवाला ऐसा कहता है-मानता है कि राग के प्रति मैं निर्मम हूँ। आहाहा!

यह सुनना कठिन पड़े ऐसा है, प्रवीणभाई! यह तुम्हारे पैसे और लादी को धूल-धाणी को पाँच-दस लाख की आमदनी हो तो मानो, ओहोहो! हम कहीं बढ़ गये हैं, दो-पाँच-दस करोड़ रुपये हों तो मैं चौड़ा और गली सँकरी हो गयी है इसे। समझ में आया? यहाँ तो यह बात है प्रभु! तीन लोक के नाथ की पुकार-वीतराग की (पुकार) यह है। यह बात तो अभी सम्प्रदाय में है ही नहीं। सम्प्रदाय में तो यह करो और यह करो, यह करो और राग की क्रिया, उसे धर्म मानते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि धर्मी जीव उसे कहते हैं कि राग के स्वाद के प्रति जो निर्मम है और अपने स्वभाव के प्रति अहंपना-मम है, यह मेरा है। आहाहा! दूसरे प्रकार से आया कि राग के स्वाद के प्रति धर्मी निर्मम है और निज स्वाद के प्रति मम है, मम। यह मम नहीं, लड़के खाते? आहाहा! अरे... अरे...! ऐसी बातें हैं। धर्मी मम करता है, मम, मम खाता

है। मम अर्थात् अपनी चीज जो आनन्द है, उसे अनुभव करता है, यह निर्मम है, यह मम है। आहाहा!

चौरासी का अवतार कर-करके मर गया है और अभी जब तक यह राग, वह मैं — ऐसी मान्यता पड़ी है, यह मिथ्यात्व की, इसमें अनन्त भव करने की ताकत है, नरक और निगोद के भव करने की इसमें ताकत है। आहाहा! ये सब अरबोंपति और करोड़पति मरकर यहाँ से पशु में जानेवाले हैं। आहाहा! क्योंकि वहाँ राग, जो तिरछा स्वभाव है, जो अपना स्वरूप नहीं है, उसके स्वाद में स्वयं मानता है कि वह मैं हूँ। उस मिथ्यादृष्टि... आहाहा! जीव ने वक्रता कर डाली जीव में। जीव का जो रागरहित स्वभाव है, ऐसा न जानकर यह दया, दान, राग के परिणाम का स्वाद वह मेरा है, ऐसी जिसने अन्तर में वक्रता की है, वह मरकर तिर्यच / तिरछा, ऐसा तिरछा शरीर है, ऐसा होगा। यह मनुष्य खड़ा है... ऐसी बात है बापू यहाँ तो, आहाहा!

तिर्यच है न? यह तिर्यच कहते हैं न प्रभु, उसे तिर्यच कहते हैं न - ऐसा तिरछा, मनुष्य ऐसा खड़ा है और गाय-भैंस, बकरा, गिलहरी के शरीर ऐसे आड़े हैं, तिरछे हैं। वे तिरछे क्यों हुए? कि उन्होंने पूर्व में वक्रता / तिरछापन बहुत किया था। शराब, माँस का भोजन हो, तब तो मरकर नरक में जाता है परन्तु वह न हो किन्तु ऐसे राग के तीव्र भाव को अपने में स्वादरूप जानकर, भगवान को तिरछा कर डाला, उल्टा कर डाला, आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं, वे जीव मरकर तिरछे, तिर्यच होंगे — गाय, भैंस और बकरा होंगे। आहाहा! अनन्त बार इस प्रकार हुआ है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं एक बार जिसने अपने आनन्द के स्वाद को लेकर स्व-सन्मुख होकर... भगवान आनन्दस्वरूप से जो विमुख था, जो शुभाशुभभाव को मानकर स्वाद लेकर मेरा है — ऐसा मानता था, वह स्वभाव से विमुख था। वह स्वभाव के सन्मुख हुआ प्रभु, आहाहा! मेरा स्वरूप तो चैतन्यस्वरूप, चैतन्य का स्वाद वह मैं - ऐसा जिसने मम किया — आनन्द का स्वाद लिया, आहाहा! उसे उस स्वाद के समक्ष, चाहे तो दया, दान, व्रत का राग हो परन्तु वह राग कलुषित जड़ का स्वाद है। अरे! यह कैसे जमे? आहाहा! कहाँ भटकता-भटकता परिभ्रमण करता इसे कहाँ (यह) बात जमे? सुनने को मिलता नहीं बेचारे को। आहाहा!

ऐसी बातें हैं प्रभु! क्या कहें? भगवान की पुकार है, सीमन्धरभगवान के पास से यह सब बात आयी है, प्रभु विराजमान हैं। महाविदेह में प्रभु विराजते हैं, सीमन्धरभगवान! आहाहा! वहाँ से आयी हुई यह बात है।

कहते हैं कि **स्वाद के भेद से...** मेरा प्रभु तो चैतन्यस्वभावी स्वादिष्ट है, आहाहा! अनाकुल आनन्द के स्वादवाला, वह मैं और यह राग का स्वाद जो मोह का स्वाद है, वह कलुषित, उसके प्रति मैं निर्मम हूँ, वह मेरा नहीं है। जीव अधिकार है न? इस राग को अजीव और जड़ कहकर जीव से भिन्न बताया है। आहा! मैं निर्मम हूँ। यह निर्मम ही हूँ, राग का कण भी जो अन्दर हो, आहाहा! आवे, परन्तु मैं निर्मम ही हूँ। शरीर, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र तो कहीं (दूर) रह गये, धूल, वह तो कहीं रह गये, इसके थे ही कहाँ? आहाहा! परन्तु धर्मी जीव तो, वे मेरे हैं ये तो बात गयी परन्तु राग मेरा है, यह बात (गयी), तब धर्मी होता है, तब वह सम्यग्दृष्टि, धर्म की शुरुआतवाला, प्रथम श्रेणी का (होता है)। आहाहा! अरेरे! ऐसी बातें यह क्या हैं? यह ऐसा वीतराग का मार्ग होगा? वीतराग मार्ग में तो दया पालना, व्रत पालना, कन्दमूल नहीं खाना, रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग करना, छह परखी आहार करना - ऐसा तो हम सुनते हैं भाई! आहाहा! यह मार्ग नहीं प्रभु! यह जैनमार्ग नहीं, यह तो रागमार्ग है।

भगवान आत्मा ही जानता है। आत्मा ही जानता है कि मैं जहाँ हूँ, वहाँ दूसरे द्रव्य... भगवान ने तो छह द्रव्य देखे हैं न? सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर ने छह द्रव्य देखे हैं, तो मैं जहाँ हूँ, वहाँ दूसरे द्रव्य हैं, दूसरे आत्मा वहाँ हैं, यहाँ आत्मा के प्रदेश के समीप, अनन्त परमाणु पड़े हैं, धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं, आकाश के हैं, काल के हैं, परन्तु **एकक्षेत्रावगाह का निवारण करना अशक्य होने से...** उन्हें क्षेत्र से पृथक् किया जा सके ऐसा नहीं है परन्तु राग के भाव की मलिनता को भाव से भेद करके, भाव से पृथक् किया जा सकता है। आहाहा!

ऐसी बातें हैं प्रभु! फिर सोनगढ़ के नाम से चाहे जो कहें, लोग। कहते हैं बेचारे, उन्हें पता नहीं न! सोनगढ़ निश्चय की बातें करता है और वीतरागता की बातें करता है। हमारी दया और व्रत (हम) पालन करते हैं, उन्हें धर्म नहीं कहता ऐसा कहते हैं, बेचारे क्या करें? यह पता नहीं।

श्रोता : ज्ञायक के स्वाद से अनजान हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनजान हैं । अन्दर जाननस्वरूप भगवान, वह चैतन्यस्वभावी प्रभु है, उसके स्वाद में तो चैतन्य का आनन्द स्वाद होता है, भाई! उसे — धर्मी जीव को उसके ख्याल में अपनापन भासित होता है । अन्दर राग आता है, उसे कर्म की ओर का जड़ का विकार, वह कर्म का है; उसका स्वाद कलुषित जहर जैसा दुःखरूप स्वाद है । आहाहा! अरेरे! चैतन्यस्वभाव वस्तु भगवान त्रिकाली अविनाशी वस्तु है । आत्मा कोई साधारण चीज नहीं है । आहाहा! उसकी पर्याय में-वर्तमान अवस्था में उसकी क्रीड़ा (विकार में) अनादि की है परन्तु उस पर्याय के समीप पूरा तत्त्व महाप्रभु, चैतन्यतत्त्व है, उसका इसे पता नहीं है । आहाहा! यह जहाँ इसे पता पड़ता है... आहाहा! कि मैं तो आत्मा ही एक हूँ, उसमें जो अनेकपना विकृत अवस्था दिखायी देती है, वह मेरा स्वाद नहीं है, मैं उसके प्रति निर्मम हूँ । आहाहा! और मेरा चैतन्य का स्वाद, रागरहित स्वाद, शान्ति और आनन्द का प्रभु, स्वभाव का स्वाद... अरे! यह... ऐसा आत्मा और क्या कहते हैं यह ? पागल जैसा लगे - ऐसा है यह । बापू! जिसने सुना नहीं, भाई! तूने पचास-साठ वर्ष सब अज्ञान में-मूढ़ता में निकाले हैं । आहाहा! यह बात सुनी नहीं है, भाई! यह पागल नहीं ? (होता) तू पागल है, इसलिए तुझे भासित नहीं होता । आहाहा! वीतराग की वाणी औषध है, राग का विरेचन करानेवाली (दवा है) । आहाहा! राग का विरेचन हो जाये और चैतन्य की निरोगता, चैतन्य की दृष्टि में आवे, आहाहा! यह वीतरागवाणी कहती है । समझ में आया ?

क्योंकि सदा अपने एकत्व में प्राप्त होने से मैं या सभी पदार्थ.... एकत्व में प्राप्त होने से समय (अर्थात्) आत्मपदार्थ अथवा प्रत्येक पदार्थ ज्यों का त्यों ही स्थित रहता है ।.... परमाणु लो तो भी परमाणु यह जड़, यह अंगुली तो अनन्त रजकण का पिण्ड है, इसका अन्तिम पाइन्ट है, टुकड़ा है, वह भी स्वयं में स्थित है । परमाणु, परमाणु में स्थित है । परमाणु को आत्मा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है । आहाहा! यह मिट्टी है, देखो यह, (शरीर) । लोग भी ऐसा कहते हैं परन्तु उन्हें भान नहीं है, बोलते अवश्य हैं कि यहाँ चोट लगे तो कहते हैं, मेरी मिट्टी पकाऊ है, पानी छूने नहीं देना, बोलते अवश्य हैं भान बिना, बोलते अवश्य हैं मेरी मिट्टी पकाऊ है । मिट्टी तो जड़-धूल की है, यह कहाँ तेरी मिट्टी थी ?

यह तो पुद्गल है। कील लग गयी हो तो पानी छूने नहीं देना, पानी की पट्टी नहीं बाँधना, मेरी मिट्टी पकाऊ है। मिट्टी कहे और फिर मेरी कहे! पागल के कोई दूसरे लक्षण होंगे? समझ में आया? आहाहा!

यह मिट्टी इसकी चीज नहीं, यह तो भिन्न है, एक जगह रहने पर भी (भिन्न है) परन्तु अन्तर में राग होता है - शुभ-अशुभराग, वह भी विकृत - कलुषित स्वभाव, वह मेरे चैतन्य का स्वाद नहीं। आहा...हा...! अरे...रे! कब करे और कब इसके भव का अन्त आवे? यह (समझे) बिना इसके भव का अन्त आवे ऐसा नहीं है। मर जाये न क्रिया कर-करके। आहाहा! वह तो सब राग की क्रिया है और राग तो कलुषित-मलिन, जड़ का स्वभाव है। अरे...रे! गजब बातें यह!

सदा अपने एकत्व में प्राप्त होने से (आत्मपदार्थ) ज्यों का त्यों ही स्थित रहता है। कोष्ठक में बतलाते हैं। (दही और शक्कर मिलाने से श्रीखंड बनता है...) दही और शक्कर (उसमें दही और शक्कर एक जैसे मालूम होते हैं,... श्रीखण्ड में तथापि प्रगटरूप खट्टे-मीठे स्वाद के भेद से....) दही खट्टा है और शक्कर मीठी है, दोनों के स्वाद के भेद से (भिन्न-भिन्न जाने जाते हैं;....) आहाहा!

शास्त्र में तो ऐसा एक लेख है कि शराब पिये हो तो उसे श्रीखण्ड खिलाओ तो उसे गाय के दूध जैसा लगता है। जिसने शराब पी है, उसे यदि श्रीखण्ड दो तो गाय का दूध पीता हूँ, ऐसा लगता है। उसे स्वाद का पता नहीं। इसी प्रकार जिसने मिथ्यात्व की शराब पी ली है, विपरीत श्रद्धा की शराब पी है। आहाहा! उसे राग का स्वाद मेरा है - ऐसा भासित होता है। आहाहा! ऐसी बात है। प्रभु का स्वरूप ऐसा है, भाई! आहाहा!

इसी प्रकार द्रव्यों के लक्षण भेद से जड़-चेतन के भिन्न-भिन्न स्वाद के कारण.... यह रागादि जड़ का स्वाद है, क्योंकि राग स्वयं जानता नहीं कि मैं कौन हूँ। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प - राग हो, उस राग में जानने की ताकत नहीं है। वह तो अचेतन है। आहाहा! राग स्वयं जानता नहीं कि मैं कौन हूँ? तथा राग के साथ चैतन्य भगवान है, उसे (राग) जानता नहीं तथा वह राग चैतन्य द्वारा ज्ञात होता है, इसलिए वह जड़ है। आहाहा!

अरेरे! जैसे इस श्रीखण्ड में शक्कर और दही का स्वाद भिन्न है, एक जैसे दिखने पर भी (भिन्न है); वैसे ही भगवान आत्मा का-चैतन्य का स्वाद और राग का (स्वाद) जड़, इस लक्षण भेद से दोनों के लक्षण भेद है, दोनों के लक्षण भिन्न हैं। जैसे दही का स्वाद खट्टा और शक्कर का स्वाद मीठा - ऐसे लक्षण भेद है। वैसे राग का स्वाद जड़ - कलुषित; भगवान का स्वाद चैतन्य और आनन्द, दोनों के लक्षण से दोनों के भेद हैं। आहाहा! समझ में आया? कुछ समझ में आया क्या कहा यह? समझ जाये तो अलग बात है, परन्तु किस पद्धति से कहा जाता है, वह शैली पकड़ में आती है? ऐसा।

अरेरे! जिनदेव का मार्ग ऐसा होगा! यहाँ तो भाई! ऐसा सुना था, कहे - दया पालो, व्रत करो, जीव को न मारो, छह काय की दया पालो, गौशाला में मदद करो, भेड़ को चारा डालो, आहाहा! प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, सामायिक करो... किसका प्रौषध? तुझे भान नहीं कि आत्मा कौन है, उसका भान नहीं (तो) प्रौषध किसका? अज्ञान का-मिथ्यात्व का प्रौषध है। वह तो मिथ्यात्व को पोषता है। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्यस्वभावी आनन्द प्रभु, उस आनन्द का स्वाद वह चैतन्य का स्वाद है और यह राग जो राग-विकल्प, हों! आहाहा! चाहे तो पंच महाव्रत के परिणाम हों, वह राग है, भाई! तुझे पता नहीं, वह तो वृत्ति का उत्थान है। उस राग का स्वाद कलुषित है। तुझे पता नहीं है। आहाहा! इस जड़ और चैतन्य के स्वाद की भिन्नता के कारण, भिन्न-भिन्न स्वाद के कारण (भिन्न) ज्ञात होते हैं। आहा! इसमें कितनी धीरज चाहिए? आहाहा! (कि मोह कर्म के उदय का स्वाद रागादिक है...) राग, द्वेष, हर्ष-शोक, यह सब भाव, मोहकर्म के उदय का यह स्वाद है। आहाहा!

प्रसन्न हो जाता है, ऐसे पैसे पाँच-पच्चीस लाख मिलें और दो लाख की मासिक आमदनी हो तो मानो... ओहोहो! कौन जाने क्या बढ़ गया? उसकी प्रसन्नता वह राग के जहर का स्वाद है। आहाहा! है?

श्रोता : हलुवा और लापसी बनावे, आप उसे जहर का स्वाद कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री - दो लाख की आमदनी हो तो कहे आज लापसी करो। धूल में भी नहीं। अब सुन न! यह सब पैसेवाले बैठे, करोड़ोंपति!

श्रोता : आप इनकार करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं, यह रहे यह 'घीया', करोड़पति है यह। हमारे प्रवीणभाई, वे तो फिर बहुत करोड़ हैं ऐसा कहते हैं। एक व्यक्ति हमसे कहता था। हमने तो सुनी हुई बात है, हों! एक व्यक्ति ऐसा कहता था छहों लड़कों के पास एक-एक करोड़ है - ऐसा कहता था। कोई समझदार व्यक्ति। नाम नहीं दिया जाता... और उसके पिता के पास अलग पचास-साठ लाख, मर गये तब उत्तराधिकार में बाईस लाख तो सरकार को देना पड़े। इनके पिता के पैसे के लिये बाईस लाख देना पड़े। कहो, यह तो सच्ची बात है न? क्योंकि इसके पिता का अलग था न! छह ब्लाक अलग-अलग पाँच-पाँच लाख के, वहाँ छह लड़कों के, पिता का अलग ब्लाक सातवाँ, पाँच-पाँच लाख के और इसकी पूँजी अलग। क्योंकि सरकार का क्या कहलाता है वह? (श्रोता : इनकम टैक्स) इनकम टैक्स। इसलिए उसके कारण बनिये भाग पाड़ते हैं। आहा! इसका पिता मर गया और अलग था, बाईस लाख सरकार को भरना पड़े। बाईस लाख तो अकेले इसके पिता के पैसे के भरने पड़े, इसके पैसे के अलग। यह सुखी होगा न?

यह जो प्रसन्नता मानता है, वह दुःख है। आहाहा! वह राग का स्वाद है, प्रभु! तुझे पता नहीं। आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की पुकार है, जगत के समक्ष... आहाहा!

श्रोता : जगत बहुत बहरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! सत्य बात सुनने को मिले नहीं, बेचारा कहाँ जाये? सिद्धान्त में तो इसे भिखारी कहा है, वरांका! आहाहा! यहाँ तो अपने दरबार आये थे न? अपने भावनगर! करोड़ का तालुका, भावनगर दरबार आये थे। यहाँ तो बहुत आते हैं। बड़े सेठ-राजा आते हैं, आये थे, दो-तीन बार आये थे। मन्दिर के समय आये थे, मानस्तम्भ के समय आये थे तो उनसे कहा था, हमारे तो क्या राजा हो या रंक हो... कहा राजा! दरबार! एक महीने में लाख माँगे, वह छोटा भिखारी; पाँच लाख माँगे, वह बड़ा भिखारी; और करोड़ रुपये माँगे वह भिखारी का भिखारी - बड़ा भिखारी है, कहा भिखारियों! आत्मा अन्दर अनन्त आनन्द की लक्ष्मी का भण्डार, उसे देखता नहीं, उसे मानता नहीं और यह बाहर की धूल... ऐ अजितभाई! यह सब पैसेवाले हैं, साठ-सत्तर लाख रुपये, धूल... धूल, हों! सब। आहाहा!

श्रोता : यहाँ तो धूल कहते हो, वहाँ रुपया कहते हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नैरोबी में तो सब बहुत पैसेवाले हैं, अपने साठ घर हैं न ? श्वेताम्बर थे, दिगम्बर हो गये । अभी सब बीस-पच्चीस वर्ष से नैरोबी (में हैं) । वहाँ भाई ! ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारस से पन्द्रह लाख के मन्दिर का खात-मुहूर्त उन लोगों ने एकत्रित होकर किया है ।

श्रोता : अब वहाँ आपको जाने की तैयारी है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अब माँगे तब । अब शरीर को ८९ वर्ष हुए, शरीर को ८९ वर्ष हुए । अब यह दिखाव ठीक, परन्तु अन्दर अब ८९ वर्ष हुए, खुराक का ठिकाना नहीं होता, नींद का ठिकाना नहीं होता, दिखाव अच्छा लगता है । माँग तो आयेगी, क्यों अजितभाई ! पन्द्रह लाख का मन्दिर बनायेंगे, नैरोबी ! वहाँ साठ घर हैं, श्वेताम्बर, सब दिगम्बर हो गये और सात-आठ घर तो करोड़पति हैं, बाकी सब घर कोई साठ लाख कोई सत्तर लाख, कोई चालीस लाख, कोई पचास लाख, बीस लाख, दस लाख ऐसे सब हैं । धूल.. धूल.. सब, हों ! ऐई !

जिसने वास्तु... क्या कहलाता है वह ? खात-मुहूर्त किया ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारस को (खात-मुहूर्त किया) यह रामजीभाई बैठे, उनका भानेज है, उसने दो लाख दो हजार दिये । यह रामजीभाई बैठे, मनसुखभाई के पीछे । दो लाख दो हजार... मात्र मन्दिर के खात-मुहूर्त में दिये । परन्तु यहाँ तो पहले से कहते हैं तेरे दो लाख क्या पन्द्रह लाख या करोड़ खर्च न, उसमें राग मन्द करे तो पुण्य है, परन्तु धर्म नहीं ।

श्रोता : फिर भी लोग बनाते हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : जो क्रिया होने की हो, वह उसके कारण होती है । वह मन्दिर क्या आत्मा से बनता है ? यह मन्दिर क्या रामजीभाई ने बनाया है यह ? प्रमुख तो यह थे ।

श्रोता : आपके पुण्य से हुआ ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! बापू ! यह पत्थर-परमाणु तो अजीव हैं, भाई ! तुझे पता नहीं । इस अजीव की पर्याय जिस क्षण में होनेवाली है, वह उससे होती है; दूसरा कहे कि मुझसे बना, मूढ़ है । आहाहा ! ऐसी बातें हैं बापू !

बैंगलोर में भी बारह लाख का मन्दिर हुआ है। मुमुक्षुओं ने बनाया है, बैंगलोर... बारह लाख... पन्द्रह लाख, अभी पन्द्रह लाख हो गये। देखो तो, हो गया है और यह तो होना है। एक व्यक्ति ने आठ लाख दिये, भभूतमल! श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी, आठ लाख और एक जुगराजजी स्थानकवासी करोड़पति... वह (दो करोड़वाला) यह करोड़वाला स्थानकवासी... मुम्बई में महावीर मार्केट... इसने चार लाख दिये। बारह लाख का मन्दिर... कहा - बापू! तू बारह लाख खर्च करे, इसलिए धर्म हो, इस बात में माल नहीं है। यह राग की मन्दता - शुभभाव करेगा (तो) पुण्य होगा। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इन लोगों ने अभी यहाँ ढाई लाख-तीन लाख यहाँ दिये न? यहाँ पोपटभाई ने उनके पिता की तरफ से... नया विश्राम गृह पाँच लाख का होनेवाला है। यहाँ लोग इतने आते हैं कि जगह नहीं रहती। दो सोसाइटी तो हो गयीं, अब तीसरी सोसाइटी उनकी तरफ से होनेवाली है। पाँच लाख, ढाई लाख उनके और ढाई लाख, जो प्लॉट ले, उसे पाँच हजार देना पड़े, दस हजार का प्लॉट बनायेंगे, पाँच-पाँच हजार देना है, तीन महीने रहेंगे, तीन महीने रहने का उन्हें। बहुत लोग यहाँ - बहुत लोग आते हैं। अब जगह में समाते नहीं इतने आते हैं। तीन-तीन हजार, पाँच-पाँच हजार लोग। अभी बहिन के उसमें (जन्मदिन में) तीन हजार लोग, श्रावण कृष्ण दूज, कहीं समाते नहीं, परन्तु यह भी यह सब वस्तु बननेवाली है, उसके कारण बनती है।

श्रोता : आपके उपदेश से बनती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बिल्कुल हराम बात है। यह सब निमित्त की बातें हैं। आहाहा!

यहाँ तो बनानेवाले का भाव, बना सकता हूँ - यह तो न हो परन्तु भाव जो है, वह शुभ है, पुण्य है, उसमें धर्म नहीं। वह पुण्य है, वह राग का-मैल का-राग का स्वाद है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! है?

जड़-चेतन के भिन्न-भिन्न स्वाद के कारण ज्ञात होता है,.... ज्ञात होता है। कि मोह कर्म के उदय का स्वाद.... राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि है। आहाहा! रागादि है न? आदि है न? राग-द्वेष-अरुचि, आहाहा! बिच्छु काटे, वह बिच्छु काटे उसका नहीं, उसकी ओर द्वेष है, उस द्वेष का इसे स्वाद है। आहाहा! यह रागादि, द्वेषादि, हर्षादि। आहाहा!

यह हर्ष जीमन (प्रीतिभोज) करते हैं न अपने बनियों में दशाश्रीमाली ! हर्ष जीमन करते हैं, सात टंक था अब तो बहुत अन्तर पड़ गया। पहले सात टंक था और हर्ष जीमन करे तो नवटंक होते थे। अब यह तो साठ-सत्तर वर्ष पहले की उमराला की बात है। यहाँ तो जन्मस्थल की बातें जानने में आयी हो न, वे जानते हैं। हर्षजीमन करे तब। आहाहा ! बारातवाला एक दिन जीमावे, फिर सब जीमें, वह हर्षजीमन, हर्षजीमन अर्थात् राग का जीमन। आहाहा ! हर्ष अर्थात् राग; हर्ष अर्थात् दुःख। यह दुःख, कर्म के उदय के स्वाद का भाव है, कहते हैं। अरेरे ! इतना सब बंटवारा... अब तो निवृत्त कहाँ बेचारा ? आहाहा !

वह चैतन्य के निजस्वभाव के स्वाद से भिन्न ही है। है ? आहा ! जो राग-शुभराग, अशुभराग, अरुचि - द्वेष, प्रसन्नता राग, प्रसन्नता रति, अप्रसन्नता अरति, शोक ये सब भाव, कर्म के निमित्त से होनेवाले विकारी भाव, उसका स्वाद है। अरे ! इतना सब ले जाना अब अन्दर ! अभी तो शरीर मेरा नहीं, ऐसा मानने में पसीना उतरे ! यह शरीर मेरा नहीं तो किसका है यह ? यह तो मिट्टी जड़ है। इसे अन्दर में पुण्य-पाप के भाव से भिन्न जानना, आहाहा ! ऐसा है प्रभु, आहाहा !

यह रागादि है, मोहकर्म के उदय का स्वाद तो राग-द्वेष, पुण्य-पाप, प्रसन्नता, रति-अरति, शोक आदि है; वे चैतन्य के निज स्वभाव के स्वाद से भिन्न ही है। आहाहा ! आहाहा ! राग का स्वाद है, (वह) आकुलता दुःखरूप है। आहाहा ! भगवान आत्मा का स्वाद, वह अनाकुल आनन्दरूप है। ऐसा जो (स्वाद) भेद करे, उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा ! चारित्र तो कहीं रह गया, बापू ! किसे कहें यह तो अभी लोगों ने सुना नहीं। यह तो अभी सम्यग्दर्शन की बात - पहली ईकाई की बात है। आहाहा ! समझ में आया ? **वह निजस्वभाव के स्वाद से....** निज अर्थात् भगवान आत्मा, स्वयं का उसका स्वभाव; स्व-भाव, अपना जो ज्ञान आनन्द, शान्त वीतरागता ऐसा जो भाव। आहाहा ! उसका स्वाद अलग है, उसके स्वाद से राग का स्वाद (अलग है) अरे !... इतना सब... आहाहा !

इस प्रकार भावकभाव जो मोह का उदय... क्या कहा यह ? भावक अर्थात् कर्म - जड़ है, मोहनीय कर्म आदि आठ कर्म हैं न ? जड़-जड़, उन्हें यहाँ भावक कहा है। भावकभाव के भावक से हुआ पुण्य-पाप के रागादि भाव, वह भावक का भाव है - ऐसा कहा है। वह भगवान आत्मा का भाव नहीं है। आहाहा !

छोटी उम्र में पढ़ते थे, तब एक भावसार था, हमारे विद्यालय में साथ में, जन्म तो उमराला में था और तेरह वर्ष वहाँ रहे। नौ वर्ष पालेज, दुकान है न वहाँ, नौ वर्ष, वहाँ पाँच वर्ष दुकान चलायी थी, अभी दुकान चालू है, बड़ी दुकान है, पैंतीस-चालीस लाख रुपये हैं, वह दुकान है, तीन-चार लाख की आमदनी है, पालेज! तुम्हारे चित्तल में विवाहा है न हमारे मनहर, मनहर क्या? मनसुख - मनसुख लालचन्दभाई की लड़की है न वहाँ? मैं वहाँ था, तब सगाई की थी, मैं वहाँ अमरेली का चातुर्मास करके चित्तल आया, तब आणंद थी मेरे साथ थे। आणंदजी उनके काका का लड़का, वह कहे कि हमारे सगाई करनी है। लालचन्दभाई की लड़की, इस हिम्मतभाई की बहिन, उस दिन मैं वहाँ था, उपाश्रय में व्याख्यान चलता था न। तब उसने प्रश्न किया, हमारे आणंदजी था न, मर गया, वह सगाई करने वहाँ आया, महाराज! यह लड़की कहाँ की, यह मनुष्य (लड़का) कहाँ का, ये क्या होता होगा, यह कुछ पूर्व का कोई सम्बन्ध होता होगा? ऐसा प्रश्न किया। वह अमरेली का चातुर्मास था न, (संवत्) ८६-८७ की बात है यह। ८७ के कार्तिक कृष्ण एकम, चित्तल के उपाश्रय में उसने प्रश्न किया। क्योंकि उसकी सगाई करने आये, लड़का नहीं लाये। लड़की यहाँ की हिम्मतभाई की बहिन। मैंने कहा पूर्व के सम्बन्ध हों ऐसा कुछ नहीं, एक हो बबूल में, एक हो थोर में ये दोनों होकर एकत्रित हुए हों, उस दिन कहा था, हों! बावल समझते हैं? बबूल, एक जीव बबूल में हो आकर लड़की हुई हो और एक थोर में हो, वह आकर लड़का हुआ हो, उन्हें कहाँ सम्बन्ध? भटकते जीव। उन्हें यह सम्बन्ध हो जाता है एक दूसरे को मेल हो कर्म का योग्य, यह तो उस दिन बात की थी, हों! चित्तल के उपाश्रय में। हमारे आणंदजी था हमारे कुंवरजी के काका का लड़का, हिस्सेदार था, गुजर गया। बहुत सारे गुजर गये, अब तीन लड़के हैं। आहाहा!

ये लोग प्रतिदिन वाँचन करते हैं, पालेज में मन्दिर बनाया है। पैंतालीस हजार का, भक्ति, वंदन, वांचन, फिर जाते हैं दुकान पर। भाई! यह तो बापू! धूल तो हुआ ही करे, यह क्या है? इसका तो करो अब मर गये, इसी इसी में।

यहाँ कहते हैं - भावकभाव! यह क्या कहा? जो कर्म जड़ है, उसे यहाँ भावक कहा है; भाव (अर्थात्) भाव को करनेवाला भावक, किसका? कौन से भाव? यह पुण्य

और पाप, दया, दान, व्रत और भक्ति के जो भाव हैं, वे भाव राग हैं। उस भाव को (करनेवाला) भावकभाव। भावक अर्थात् कर्म का भाव है, वह आत्मा के स्वभाव का भाव नहीं। आहाहा! भाषा तो सादी है, प्रभु! भाव भले चाहे कितने हों, भाषा तो सादी हुई है।

श्रोता : भाव तो गहरे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव गहरे परन्तु वस्तु तो यह है। जब इसे करना होगा, तब इसी प्रकार करना पड़ेगा तो भव का अन्त आयेगा। (वरना) मर जाये तो भी नहीं आयेगा। भटक मरेगा चौरासी के अवतार में। आहाहा! समझ में आया? आहा!

क्या कहा यह? ऊपर आया न, वह ज्यों का त्यों स्थित रहता है। उसके बाद यह है, भाई! वह तो (था) **अपने एकत्व में प्राप्त होने से समय ज्यों का त्यों ही स्थित रहता है**। उसके बाद यह है, वह तो कोष्ठक में (था) ऐसा का ऐसा स्थित रहता है। इस प्रकार भावकभाव जो कर्म जड़-मिट्टी है, आठ कर्म रजकण है-मिट्टी धूल है, इस शरीर की जैसी धूल है, इसके जैसी बारीक धूल है। आहाहा! उसके भावक का भाव, यह राग और पुण्य-पाप का भाव, आहाहा! यह दया का भाव, यह पर की दया का भाव, यह राग, यह भावक का भाव; जीव का भाव नहीं। आहाहा! चिल्लाते हैं बेचारे, बहुत विरोध करते हैं। करो, करो, प्रभु! तुम्हें पता नहीं। आहाहा! अरे! यह तो पर की दया को राग कहते हैं, हिंसा कहते हैं...

श्रोता : सुनने आता नहीं न, बैठे-बैठे लिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया इस रूप पड़ी है, बेचारा क्या करे? मूढ़ रूप से पड़े हैं, इस प्रकार कहे। 'जामै जितनी बुद्धि है इतनी दियो बताय, बाको बुरौ न मानिये और कहाँ से लाये' आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह ऊपर आया था न, **सदा अपने एकत्व में प्राप्त होने से समय ज्यों का त्यों ही स्थित रहता है**। इस प्रकार,... वह तो कोष्ठक में था। भावक भाव जो मोह का उदय (उससे भेदज्ञान हुआ)। लो, मोहकर्म जड़ है, उसका उदय पुण्य-पाप के रागादिभाव। आहाहा! यह लोग कहते हैं कि दया पालो, दया पालो। 'दया वह सुख की बेलड़ी, दया वह सुख की खान। अनन्त जीव मुक्ति गये'... दया से! अरे! सुन न अब!

कौन सी दया ? यह पर की दया तो राग है; स्व की दया, राग के भाव से भिन्न, मेरी जीवन ज्योति भिन्न है, उसे — चैतन्य को चैतन्यरूप से रखना, अनुभव में लेना, वही अपनी दया है। आहाहा! समझ में आया ? वह यहाँ कहते हैं।

इस प्रकार भावकभाव.... अर्थात् ? मोह का उदय, उससे भेदज्ञान हुआ। उससे भिन्न किया, बताया – भेदज्ञान! समझ में आया ? कहो, धीरूभाई! ऐसी बातें हैं। नये लोगों को तो ऐसा लगे कि यह क्या है ? यह जैनधर्म की बात होगी या यह नया पंथ, नया मार्ग निकाला होगा ? अरे भाई! तुझे पता नहीं, प्रभु! आहाहा! त्रिलोकनाथ जिनेश्वर परमेश्वर ने यह कहा कि धर्मी जीव होने पर उसे कर्म के निमित्त से होनेवाले विकारी भावकभाव का स्वाद भिन्न जानकर, आहाहा! और अपना स्वाद भिन्न जानता है। आहा! तब उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-धर्म की शुरुआत होती है। आहाहा! (उदय) उससे भेदज्ञान हुआ। यह टीका की बात की। भावार्थ कहा जायेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)